

भारतीय संघवाद और छोटे राज्यों का गठन: उत्तराखंड के संदर्भ में एक ऐतिहासिक अध्ययन

शोध निर्देशक

डॉ० नीरज रूवाली, डी. लिट्.
इतिहास विभाग
एम०बी०पी०जी० कॉलेज
हल्द्वानी, नैनीताल

शोध छात्र

विनोद सिंह जीना
इतिहास विभाग
एम०बी०पी०जी० कॉलेज
हल्द्वानी, नैनीताल

सारांश

भारत में राज्यों का पुनर्गठन स्वतंत्रता के बाद से एक सतत प्रक्रिया रही है, जो भारतीय संघवाद की गतिशील प्रकृति को दर्शाती है। वर्ष 2000 में छोटे राज्यों, विशेष रूप से उत्तराखंड का निर्माण, संघीय ढांचे के भीतर क्षेत्रीय आकांक्षाओं को समायोजित करने में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर दर्शाता है।

यह शोध पत्र भारतीय संघवाद के सैद्धांतिक आधारों की जांच करता है, छोटे राज्यों के लिए आंदोलन का विश्लेषण करता है, और झारखंड और छत्तीसगढ़ जैसे अन्य छोटे राज्यों के साथ उत्तराखंड के गठन का तुलनात्मक अध्ययन करता है। अध्ययन गुणात्मक अनुसंधान पद्धति को नियोजित करता है, ऐतिहासिक दस्तावेजों, नीति पत्रों और अनुभवजन्य डेटा की जांच करता है ताकि सामाजिक-राजनीतिक, आर्थिक और प्रशासनिक कारकों को समझा जा सके जिसके कारण राज्य पुनर्गठन हुआ।

निष्कर्ष बताते हैं कि जबकि छोटे राज्यों के निर्माण ने क्षेत्रीय पहचान की चिंताओं को संबोधित किया है और कुछ पहलुओं में प्रशासनिक दक्षता में सुधार किया है, इसने आर्थिक व्यवहार्यता, संसाधन वितरण और केंद्र-राज्य संबंधों के संदर्भ में चुनौतियां भी पेश की हैं। यह पत्र आगे राज्य पुनर्गठन की मांगों के संदर्भ में संघवाद के प्रबंधन के लिए नीतिगत सिफारिशों के साथ समाप्त होता है।

मूल शब्द: भारतीय संघवाद, राज्य पुनर्गठन, उत्तराखंड, क्षेत्रीय पहचान, प्रशासनिक दक्षता, केंद्र-राज्य संबंध

1. परिचय

भारत की संघीय संरचना लोकतांत्रिक शासन में सबसे जटिल और अद्वितीय प्रयोगों में से एक का प्रतिनिधित्व करती है। शास्त्रीय संघीय प्रणालियों के विपरीत, जहां राज्य संघ से पहले होते हैं, भारतीय संघवाद विविध क्षेत्रीय इकाइयों के एकीकरण और पुनर्गठन की प्रक्रिया के माध्यम से विकसित हुआ। भारतीय संघ के भीतर छोटे राज्यों का निर्माण देश के राजनीतिक प्रवचन में एक आवर्ती विषय रहा है, जो प्रशासनिक दक्षता, सांस्कृतिक पहचान और आर्थिक विकास के बीच तनाव को दर्शाता है।

वर्ष 2000 एक ऐतिहासिक क्षण था जब तीन नए राज्यों- छत्तीसगढ़, झारखंड और उत्तराखंड को मौजूदा राज्यों से अलग किया गया था, जो 1956 के राज्य पुनर्गठन अधिनियम के बाद से राज्य पुनर्गठन के सबसे बड़े एकल उदाहरण का प्रतिनिधित्व करते थे।

उत्तराखंड, जिसे पहले उत्तरांचल के नाम से जाना जाता था, कई दशकों के लंबे संघर्ष के बाद भारत के 27वें राज्य के रूप में उभरा। एक अलग पहाड़ी राज्य की मांग भौगोलिक विशिष्टता, सांस्कृतिक पहचान और मूल राज्य उत्तर प्रदेश द्वारा कथित उपेक्षा में निहित थी। उत्तराखंड का गठन भारतीय संघवाद की प्रकृति के बारे में बुनियादी सवाल उठाता है: भारतीय संघीय प्रणाली क्षेत्रीय आकांक्षाओं को कैसे समायोजित करती है? नए राज्यों

के निर्माण के लिए मानदंड क्या हैं? राज्य पुनर्गठन शासन, विकास और सामाजिक सामंजस्य को कैसे प्रभावित करता है?

यह शोध पत्र भारतीय संघवाद और उत्तराखंड के गठन के विशिष्ट मामले के व्यापक विश्लेषण के माध्यम से इन सवालों का समाधान करने का प्रयास करता है। इसी अवधि के दौरान बनाए गए अन्य छोटे राज्यों के साथ उत्तराखंड की तुलना करके, इस अध्ययन का उद्देश्य राज्य पुनर्गठन की प्रक्रिया से सीखे गए पैटर्न, चुनौतियों और सबक की पहचान करना है। अनुसंधान को कई खंडों में व्यवस्थित किया गया है: भारतीय संघवाद का एक सैद्धांतिक ढांचा, राज्य पुनर्गठन का ऐतिहासिक विकास, उत्तराखंड आंदोलन और इसकी परिणति, झारखंड और छत्तीसगढ़ के साथ तुलनात्मक विश्लेषण, गठन के बाद के प्रदर्शन का आकलन, और अंत में, नीतिगत सिफारिशों के साथ निष्कर्ष।

1.1 अनुसंधान उद्देश्य

इस शोध के प्राथमिक उद्देश्य हैं:

1. भारतीय संघवाद की सैद्धांतिक नींव और विकास की जांच करना
2. छोटे राज्यों की मांग के लिए ऐतिहासिक और समकालीन कारकों का विश्लेषण करना
3. उत्तराखंड आंदोलन और राज्य के दर्जे में परिणत होने वाली राजनीतिक प्रक्रिया का अध्ययन करना
4. झारखंड और छत्तीसगढ़ के साथ उत्तराखंड का तुलनात्मक विश्लेषण करना
5. शासन, विकास और पहचान की राजनीति पर राज्य गठन के प्रभाव का आकलन करना
6. पुनर्गठित राज्यों में संघीय संबंधों के प्रबंधन में चुनौतियों और अवसरों की पहचान करना

1.2 अनुसंधान पद्धति

यह अध्ययन एक गुणात्मक अनुसंधान दृष्टिकोण को नियोजित करता है, जिसमें ऐतिहासिक विश्लेषण, तुलनात्मक केस स्टडी पद्धति और नीति विश्लेषण का संयोजन होता है। प्राथमिक स्रोतों में सरकारी रिपोर्ट, विधायी बहस, नीति दस्तावेज और आधिकारिक एजेंसियों से सांख्यिकीय डेटा शामिल हैं। माध्यमिक स्रोतों में अकादमिक साहित्य, शोध पत्र, किताबें और मीडिया रिपोर्ट शामिल हैं। तुलनात्मक ढांचा राजनीतिक लामबंदी, आर्थिक संकेतक, प्रशासनिक दक्षता और सामाजिक विकास परिणामों सहित कई आयामों की जांच करता है। निष्कर्षों की वैधता और विश्वसनीयता सुनिश्चित करने के लिए डेटा त्रिकोणीकरण का उपयोग किया गया है।

2. सैद्धांतिक ढांचा: भारतीय संघवाद को समझना

2.1 संघवाद की अवधारणा और प्रकृति

एक राजनीतिक प्रणाली के रूप में संघवाद में एक केंद्रीय प्राधिकरण और घटक क्षेत्रीय इकाइयों के बीच शक्तियों का संवैधानिक विभाजन शामिल है। शास्त्रीय संघीय सिद्धांत, केसी व्हेयर जैसे विद्वानों द्वारा व्यक्त किया गया है, समन्वय संप्रभुता, संवैधानिक सर्वोच्चता और सरकार के स्तरों के बीच शक्तियों के विभाजन पर जोर देता है। हालांकि, संघीय प्रणालियाँ ऐतिहासिक परिस्थितियों, राजनीतिक संस्कृति और सामाजिक संरचना के आधार पर उनकी संरचना और संचालन में काफी भिन्न होती हैं [1]।

भारतीय संघवाद विशिष्ट विशेषताएं प्रस्तुत करता है जो इसे संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा या ऑस्ट्रेलिया जैसे शास्त्रीय संघीय मॉडल से अलग करता है। 1950 में अपनाए गए भारतीय संविधान ने बीआर अंबेडकर द्वारा सख्त अर्थों में एक संघ के बजाय "राज्यों के संघ" के रूप में वर्णित किया था। यह सूत्रीकरण कई मामलों में शास्त्रीय संघवाद से संविधान के प्रस्थान को दर्शाता है: संविधान संघीय संरचनाओं के साथ भावना में एकात्मक है, केंद्र के पास कुछ परिस्थितियों में अधिभावी शक्तियां हैं, और राज्य पहले से मौजूद संप्रभुता के बजाय संविधान से अपना अधिकार प्राप्त करते हैं।

2.2 भारतीय संघवाद की विशिष्ट विशेषताएं

असममित संघवाद: भारतीय प्रणाली असममित व्यवस्थाओं के माध्यम से विविधता को समायोजित करती है। जम्मू-कश्मीर के लिए अनुच्छेद 370 (अब निरस्त), अनुच्छेद 371 के तहत पूर्वोत्तर राज्यों के लिए विशेष प्रावधान और केंद्र शासित प्रदेशों के लिए विभिन्न शासन संरचनाएं इस विषमता को दर्शाती हैं। यह लचीलापन संघीय प्रणाली को विभिन्न क्षेत्रीय परिस्थितियों का जवाब देने की अनुमति देता है [2]।

सहकारी संघवाद: संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रतिस्पर्धी संघवाद के विपरीत, भारत केंद्र और राज्यों के बीच सहयोग पर जोर देता है। अंतर-राज्य परिषद, नीति आयोग (पूर्व में योजना आयोग) और विभिन्न समन्वय तंत्र जैसे संस्थान इस सहयोग को सुविधाजनक बनाते हैं। सातवीं अनुसूची की समवर्ती सूची महत्वपूर्ण विषयों पर साझा क्षेत्राधिकार को सक्षम बनाती है।

मजबूत केंद्र: संविधान केंद्र सरकार को पर्याप्त शक्तियां प्रदान करता है, जिसमें आपातकालीन प्रावधान (अनुच्छेद 352-360), राज्यपालों की नियुक्ति, केंद्रीय बलों की तैनाती और वित्तीय प्रभुत्व शामिल हैं। इस केंद्रीकरण को संस्थापक पिताओं द्वारा राष्ट्रीय एकता, सुरक्षा और विकास के लिए आवश्यक के रूप में उचित ठहराया गया था।

संवैधानिक लचीलापन: कठोर संघीय संविधानों के विपरीत, भारतीय संविधान संसदीय कानून (अनुच्छेद 3) के माध्यम से राज्यों के पुनर्गठन की अनुमति देता है। इस प्रावधान ने बदलती परिस्थितियों के लिए संघीय ढांचे के निरंतर अनुकूलन को सक्षम बनाया है।

2.3 राज्य पुनर्गठन के लिए सैद्धांतिक औचित्य

प्रशासनिक दक्षता: लोक प्रशासन सिद्धांत से पता चलता है कि छोटी प्रशासनिक इकाइयाँ नागरिकों की निकटता, नौकरशाही परतों को कम करने और केंद्रित नीति कार्यान्वयन के माध्यम से शासन की प्रभावशीलता को बढ़ा सकती हैं [3]। अधीनता के सिद्धांत का तर्क है कि शासन नागरिकों के निकटतम व्यावहारिक स्तर पर होना चाहिए।

पहचान और मान्यता: सांस्कृतिक बहुलवाद को मान्यता देने वाले राजनीतिक सिद्धांत का तर्क है कि संघीय प्रणालियों को अलग-अलग पहचानों को समायोजित करना चाहिए। बहुसांस्कृतिक नागरिकता पर विल किमलिका के काम से पता चलता है कि अलग-अलग समूहों के लिए क्षेत्रीय स्वायत्तता लोकतंत्र को मजबूत कर सकती है और संघर्ष को कम कर सकती है [4]।

आर्थिक विकास: विकास सिद्धांत का मानना ​​है कि प्रशासनिक पुनर्गठन लक्षित नीतियों, संसाधन जुटाने और विशिष्ट भौगोलिक चुनौतियों का समाधान करके क्षेत्रीय आर्थिक क्षमता को अनलॉक कर सकता है। प्रतिस्पर्धी संघवाद का सिद्धांत बताता है कि कई राज्य नीतियों के साथ प्रयोग कर सकते हैं, नवाचार प्रयोगशालाओं का निर्माण कर सकते हैं।

लोकतांत्रिक भागीदारी: छोटे राज्य संभावित रूप से सरकार को लोगों के करीब लाकर, राजनीतिक प्रतिनिधित्व बढ़ाकर और स्थानीय नेतृत्व के लिए अवसर पैदा करके लोकतांत्रिक भागीदारी को बढ़ाते हैं। रॉबर्ट डाहल की "लोकतांत्रिक इष्टतम आकार" की अवधारणा लोकतांत्रिक इकाइयों के पैमाने की सीमा का सुझाव देती है [5]।

3. भारत में राज्य पुनर्गठन का ऐतिहासिक विकास

3.1 स्वतंत्रता-पूर्व प्रांतीय संरचना

ब्रिटिश भारत की प्रशासनिक संरचना में अप्रत्यक्ष शासन के तहत ब्रिटिश और रियासतों द्वारा सीधे प्रशासित प्रांत शामिल थे। प्रांतीय सीमाएं भाषाई, सांस्कृतिक या जातीय विचारों के बजाय औपनिवेशिक प्रशासनिक सुविधा को

दर्शाती हैं। प्रमुख प्रांतों में बंगाल, बॉम्बे, मद्रास, संयुक्त प्रांत, पंजाब और मध्य प्रांत शामिल थे। इस कृत्रिम व्यवस्था ने स्वतंत्रता के बाद पुनर्गठन की मांगों के लिए आधार बनाया।

3.2 रियासतों का एकीकरण (1947-1950)

1947 में भारत की स्वतंत्रता विभाजन और 560 से अधिक रियासतों को एकीकृत करने की चुनौती के साथ हुई। गृह मंत्री के रूप में सरदार वल्लभभाई पटेल ने अनुनय, दबाव और सामयिक बल के माध्यम से इस विशाल एकीकरण का आयोजन किया। इस प्रक्रिया ने भाग बी राज्यों (पूर्व रियासतों में), भाग सी राज्यों (मुख्य आयुक्तों के प्रांत), और भाग ए राज्यों (पूर्व ब्रिटिश प्रांतों) का निर्माण किया। यह प्रारंभिक संरचना बोझिल थी और युक्तिकरण की आवश्यकता थी [6]।

3.3 भाषाई पुनर्गठन आंदोलन

1950 के दशक में भाषाई राज्यों की मांग दृढ़ता से उभरी। न्यायमूर्ति फजल अली के नेतृत्व में 1953 में स्थापित राज्य पुनर्गठन आयोग (एसआरसी) ने इस प्रश्न की व्यापक जांच की। 1955 में प्रस्तुत आयोग की रिपोर्ट में प्रशासनिक, वित्तीय और रणनीतिक कारकों पर विचार करते हुए मुख्य रूप से भाषाई आधार पर पुनर्गठन की सिफारिश की गई थी। 1956 के राज्य पुनर्गठन अधिनियम ने 14 राज्यों और 6 केंद्र शासित प्रदेशों का निर्माण किया, जिसने भारत के संघीय मानचित्र को मौलिक रूप से नया आकार दिया।

भाषाई राज्यों का निर्माण संघीय ढांचे के भीतर क्षेत्रीय पहचान के एक महत्वपूर्ण समायोजन का प्रतिनिधित्व करता है। हालांकि, एसआरसी ने प्रशासनिक और आर्थिक व्यवहार्यता पर जोर देते हुए छोटे राज्य बनाने के खिलाफ चेतावनी दी थी। पहचान की पहचान और प्रशासनिक दक्षता के बीच इस तनाव ने बाद की पुनर्गठन बहसों को आकार देना जारी रखा है [7]।

3.4 बाद के पुनर्गठन (1960-2000)

1956 के बाद, कई पुनर्गठन हुए:

- 1960: बॉम्बे को भाषाई आधार पर महाराष्ट्र और गुजरात में विभाजित किया गया था
- 1963: नागालैंड विशेष रूप से जनजातीय आबादी के लिए पहले राज्य के रूप में बनाया गया
- 1966: पंजाब का पुनर्गठन, हरियाणा का निर्माण और हिमाचल प्रदेश का विस्तार
- 1971: हिमाचल प्रदेश को मिला पूर्ण राज्य का दर्जा
- 1972: मेघालय, मणिपुर और त्रिपुरा पूर्ण राज्य बन गए
- 1975: सिक्किम 22वें राज्य के रूप में एकीकृत
- 1986: मिजोरम और अरुणाचल प्रदेश को राज्य का दर्जा दिया गया
- 1987: गोवा दमन और दीव से अलग होकर पूर्ण राज्य

प्रत्येक पुनर्गठन विशिष्ट परिस्थितियों को दर्शाता है - भाषाई पहचान, आदिवासी आकांक्षाएं, रणनीतिक विचार या राजनीतिक समझौते। हालांकि, 2000 तक बड़े राज्यों से एक साथ कई राज्य बनाने में कोई भी शामिल नहीं था [8]।

3.5 2000 पुनर्गठन: एक नया चरण

2000 में छत्तीसगढ़, झारखंड और उत्तराखंड का निर्माण पिछले पुनर्गठन से अलग होने का प्रतिनिधित्व करता है। भाषाई पुनर्गठन के विपरीत, इन नए राज्यों को भौगोलिक पहचान, आदिवासी एकाग्रता और प्रशासनिक उपेक्षा के तर्कों के आधार पर एकल मूल राज्यों से उकेरा गया था। यह पुनर्गठन भाजपा के नेतृत्व वाली एनडीए सरकार के तहत हुआ, जिसने अपने चुनावी घोषणापत्र में छोटे राज्यों का समर्थन किया था। तीन राज्यों के एक साथ निर्माण ने छोटी प्रशासनिक इकाइयों की मांगों को समायोजित करने की दिशा में एक व्यवस्थित नीति बदलाव का सुझाव दिया [8, 9]।

4. उत्तराखंड आंदोलन: राज्य की उत्पत्ति

4.1 भौगोलिक और सांस्कृतिक विशिष्टता

उत्तराखंड में उत्तरी भारत के हिमालयी और उप-हिमालयी क्षेत्र शामिल हैं, जो लगभग 53,483 वर्ग किलोमीटर में फैले हुए हैं। राज्य में दो अलग-अलग क्षेत्र हैं: गढ़वाल और कुमाऊं, तेरह जिलों के साथ। यह भूभाग मुख्य रूप से पहाड़ी है, जिसकी ऊंचाई दक्षिणी मैदानों में 300 मीटर से लेकर हिमालय की चोटियों में 7,800 मीटर से अधिक है। इस भौगोलिक विशिष्टता ने अद्वितीय चुनौतियाँ पैदा कीं और एक अलग क्षेत्रीय पहचान को बढ़ावा दिया।

उत्तराखंड का सांस्कृतिक परिदृश्य इसके हिमालयी चरित्र को दर्शाता है। इस क्षेत्र में अलग-अलग बोलियाँ (गढ़वाली और कुमाऊनी), लोक परंपराएं, धार्मिक प्रथाएं और सामाजिक संरचनाएं हैं। पहाड़ियाँ हिंदू पौराणिक कथाओं और तीर्थयात्रा में महत्वपूर्ण रही हैं, जिनमें चार धाम (चार पवित्र मंदिर) और कई अन्य धार्मिक स्थल हैं। इस सांस्कृतिक विरासत ने उत्तर प्रदेश के मैदानों से अलग पहचान की भावना में योगदान दिया [10]।

4.2 आंदोलन की ऐतिहासिक जड़ें

अलग पहाड़ी राज्य की मांग की गहरी ऐतिहासिक जड़ें हैं। ब्रिटिश शासन के दौरान, गढ़वाल और कुमाऊं के पहाड़ी क्षेत्रों को मैदानी क्षेत्रों से अलग तरीके से प्रशासित किया गया था। अंग्रेजों ने इन क्षेत्रों के विशिष्ट चरित्र को पहचाना और कुछ प्रशासनिक स्वायत्तता प्रदान की। स्वतंत्रता के बाद, पहाड़ी जिलों के संयुक्त प्रांत (बाद में उत्तर प्रदेश) के साथ विलय ने पहचान के कमजोर होने और प्रशासनिक उपेक्षा के बारे में चिंताएं पैदा करना शुरू कर दिया।

1950 के दशक में अलगाव की प्रारंभिक अभिव्यक्ति दिखाई दी, लेकिन 1970 के दशक में संगठित राजनीतिक लामबंदी शुरू हुई। 1979 में स्थापित उत्तराखंड क्रांति दल ने स्पष्ट रूप से एक अलग राज्य की मांग की। 1980 और 1990 के दशक के दौरान आंदोलन ने गति पकड़ी, जिसमें छात्रों, महिलाओं, बुद्धिजीवियों और राजनीतिक कार्यकर्ताओं सहित विविध सामाजिक समूह शामिल थे [11]।

4.3 आंदोलन को चलाने वाले कारक

कथित उपेक्षा: पहाड़ी निवासियों ने उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा व्यवस्थित उपेक्षा को महसूस किया, जिसने मैदानी विकास को प्राथमिकता दी। पहाड़ी क्षेत्रों में बुनियादी ढांचा, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा और रोजगार के अवसर अपर्याप्त रहे। एक बड़े राज्य के भीतर हाशिए पर रहने की धारणा ने अलगाववादी भावनाओं को बढ़ावा दिया।

आर्थिक हाशियाकरण: कृषि, वानिकी और पर्यटन पर आधारित पहाड़ी अर्थव्यवस्था पर अपर्याप्त ध्यान दिया गया। मैदानी कृषि के लिए बनाई गई विकास नीतियां पहाड़ी परिस्थितियों के लिए अनुपयुक्त थीं। वन संरक्षण नीतियां, जबकि आवश्यक हैं, पर्याप्त विकल्पों के बिना आजीविका के विकल्पों को प्रतिबंधित कर देती हैं। रोजगार के लिए मैदानी और अन्य राज्यों में प्रवास आर्थिक संकट को दर्शाता है [12]।

पर्यावरण संबंधी चिंताएं: 1970 के दशक के चिपको आंदोलन, जो उत्तराखंड में शुरू हुआ, ने पर्यावरणीय क्षरण और अस्थिर संसाधन दोहन को उजागर किया। प्राकृतिक संसाधनों पर स्थानीय नियंत्रण पर आंदोलन का जोर पर्यावरणीय चिंताओं को राजनीतिक स्वायत्तता की मांगों से जोड़ता है।

प्रशासनिक दूरी: राज्य की राजधानी लखनऊ के शासन ने शारीरिक और मनोवैज्ञानिक दूरी बनाई। पहाड़ी निवासियों को राज्य प्रशासनिक कार्यालयों तक पहुंचने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, जो मैदानी क्षेत्रों में केंद्रित थे। इस दूरी ने अलगाव की भावनाओं को मजबूत किया।

पहचान की राजनीति: विशिष्ट पहाड़ी (पहाड़ी) पहचान का दावा आंदोलन का केंद्र बन गया। सांस्कृतिक विशिष्टता, भौगोलिक विशिष्टता और ऐतिहासिक अलगाव को राज्य के माध्यम से राजनीतिक मान्यता के लिए बहस करने के लिए जुटाया गया था।

4.4 आंदोलन के चरण

चरण I (1950-1970): प्रारंभिक मांगें प्रारंभिक अभिव्यक्तियाँ खंडित रहीं और बड़े पैमाने पर लामबंदी की कमी थी। बौद्धिक और सांस्कृतिक संगठनों ने पहाड़ी पहचान और विकास के बारे में चिंता व्यक्त की।

चरण II (1979-1994): संगठित लामबंदी उत्तराखंड क्रांति दल के गठन ने संगठनात्मक संरचना प्रदान की। बड़े पैमाने पर विरोध प्रदर्शनों, प्रदर्शनों और राजनीतिक अभियानों ने निरंतर दबाव पैदा किया। आंदोलन ने सामाजिक वर्गों में विविध प्रतिभागियों को आकर्षित किया।

चरण III (1994-2000): गहनता और सफलता अक्टूबर 1994 की रामपुर तिराहा की घटना, जहां पुलिस की गोलीबारी में प्रदर्शनकारियों की मौत हो गई, एक ऐतिहासिक क्षण बन गया। इस घटना ने आंदोलन के लिए शहीद पैदा किए और जनता का समर्थन बढ़ाया। राजनीतिक दलों ने शुरू में झिझकते हुए इस मांग का समर्थन करना शुरू कर दिया। भाजपा ने अपने घोषणापत्र में राज्य गठन को शामिल किया, और 1998 में केंद्र सरकार बनाने के बाद, उत्तर प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, 2000 में समाप्त होने वाली प्रक्रिया शुरू की।

4.5 राजनीतिक प्रक्रिया और विधायी यात्रा

उत्तराखंड बनाने की विधायी प्रक्रिया में कई चरण शामिल थे। उत्तर प्रदेश विधानसभा ने राज्य विभाजन का समर्थन करते हुए एक प्रस्ताव पारित किया। केंद्र सरकार ने जुलाई 2000 में संसद में उत्तर प्रदेश पुनर्गठन विधेयक पेश किया। विधेयक को एक संसदीय प्रवर समिति के पास भेजा गया था, जिसने संशोधनों की सिफारिश की थी। दोनों सदनों द्वारा संसदीय बहस और पारित होने के बाद, राष्ट्रपति ने 9 अगस्त, 2000 को सहमति दी। उत्तराखंड 9 नवंबर, 2000 को भारत के 27 वें राज्य के रूप में अस्तित्व में आया [13]।

राजनीतिक प्रक्रिया ने कई गतिशीलता को उजागर किया: जिले की सीमाओं (विशेष रूप से उधम सिंह नगर और हरिद्वार) पर बातचीत, संपत्ति और देनदारियों का विभाजन, जल संसाधनों का बंटवारा, और मैदानी क्षेत्रों में काम करने वाले पहाड़ी क्षेत्रों के कर्मचारियों के लिए व्यवस्था। इन वार्ताओं ने बाद के राज्य पुनर्गठन के लिए मिसाल कायम की।

5. तुलनात्मक विश्लेषण: उत्तराखंड, झारखंड और छत्तीसगढ़

5.1 राज्य गठन में सामान्य कारक

2000 में बनाए गए तीन राज्यों ने कई समानताएं साझा कीं:

भौगोलिक विशिष्टता: प्रत्येक के पास अलग-अलग भौगोलिक विशेषताएं थीं- उत्तराखंड का हिमालयी इलाका, झारखंड का छोटा नागपुर पठार और खनिज संपदा, और छत्तीसगढ़ के घने जंगल और आदिवासी सांद्रता।

कथित उपेक्षा: तीनों क्षेत्रों ने अपने-अपने मूल राज्यों (उत्तर प्रदेश, बिहार और मध्य प्रदेश) द्वारा प्रशासनिक और विकासात्मक उपेक्षा की लंबे समय से चली आ रही धारणाओं का अनुभव किया।

पहचान के दावे: आदिवासी चरित्र (झारखंड और छत्तीसगढ़) या भौगोलिक-सांस्कृतिक विशिष्टता (उत्तराखंड) पर आधारित मजबूत क्षेत्रीय पहचान ने आंदोलनों को आगे बढ़ाया।

लंबा संघर्ष: प्रत्येक आंदोलन में ऐतिहासिक गहराई थी, जिसमें राज्य का दर्जा प्राप्त करने से पहले दशकों तक संगठित अभियान चलाए गए थे।

राजनीतिक अवसर: तीनों राज्यों का गठन एक ही केंद्र सरकार के तहत हुआ, जो राजनीतिक इच्छाशक्ति और राजनीतिक समय को दर्शाता है।

5.2 प्रत्येक आंदोलन की विशिष्ट विशेषताएं

समानताओं के बावजूद, प्रत्येक आंदोलन में अद्वितीय विशेषताएं थीं:

उत्तराखंड:

- जनजातीय पहचान के बजाय भौगोलिक और सांस्कृतिक विशिष्टता पर जोर दिया

- चिपको आंदोलन विरासत के माध्यम से मजबूत पर्यावरणीय आयाम
- समर्थन के तर्कों के रूप में धार्मिक और तीर्थयात्रा का महत्व
- रामपुर तिराहा की घटना को छोड़कर सीमित हिंसा के साथ अपेक्षाकृत शांतिपूर्ण आंदोलन
- क्रॉस-पार्टी आम सहमति अपेक्षाकृत तेजी से उभरी

झारखंड:

- जनजातीय पहचान और स्वशासन की आकांक्षाओं पर केंद्रित
- आजादी से पहले झारखंड पार्टी से जुड़ी लंबी ऐतिहासिक जड़ें
- कई राज्यों (बिहार, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, मध्य प्रदेश) को शामिल करते हुए जटिल वार्ताएं
- खनिज संसाधनों पर नियंत्रण पर जोर
- अधिक खंडित राजनीतिक नेतृत्व

छत्तीसगढ़:

- व्यापक क्षेत्रीय उपेक्षा आख्यान के साथ संयुक्त आदिवासी पहचान
- झारखंड की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक हाल ही में संगठित आंदोलन
- मध्य प्रदेश से स्पष्ट भौगोलिक सीमांकन
- कम हिंसा और राजनीतिक सहमति अधिक आसानी से हासिल की गई
- आर्थिक विकास के तर्क प्रमुख थे

5.3 जनसांख्यिकीय और भौगोलिक तुलना

परामीटर/मानदंड	उत्तराखंड	झारखंड	छत्तीसगढ़
क्षेत्रफल (वर्ग किमी)	53,483	79,714	1,35,192
जनसंख्या (2011)	10.1 मिलियन	33 मिलियन	25.5 मिलियन
जिलों की संख्या	13	24	27
जनसंख्या घनत्व	189/वर्ग किमी	414/वर्ग किमी	189/वर्ग किमी
शहरी जनसंख्या (%)	30.23%	24.05%	23.24%
साक्षरता दर (%)	79.63%	67.63%	71.04%

5.4 आर्थिक प्रदर्शन तुलना

विकास प्रक्षेपवक्र: उत्तराखंड ने गठन के बाद के शुरुआती वर्षों में अपेक्षाकृत उच्च आर्थिक विकास दर का प्रदर्शन किया, आंशिक रूप से औद्योगिक प्रोत्साहन और विशेष श्रेणी का दर्जा (बाद में वापस ले लिया गया) के कारण। 2005-2015 के दौरान राज्य की जीएसडीपी वृद्धि औसतन लगभग 10-12% थी, जबकि झारखंड की 8-10% और छत्तीसगढ़ की 7-9% [14] थी।

आर्थिक संरचना: प्रत्येक राज्य ने अपने संसाधन बंदोबस्ती को दर्शाते हुए अलग-अलग आर्थिक प्रोफाइल विकसित किए: उत्तराखंड में पर्यटन, पनबिजली बिजली, फार्मास्यूटिकल्स और ऑटोमोबाइल विनिर्माण; झारखंड में खनन, इस्पात, भारी उद्योग; और छत्तीसगढ़ में कृषि, इस्पात, बिजली उत्पादन, वन उत्पाद।

प्रति व्यक्ति आय: उत्तराखंड ने 2019-20 तक प्रति व्यक्ति आय वृद्धि हासिल की, जो झारखंड के 82,000 रुपये और छत्तीसगढ़ के 1,05,000 रुपये की तुलना में 1,80,000 रुपये (लगभग) तक पहुंच गई। हालांकि, राज्यों के भीतर आय असमानता और क्षेत्रीय असमानताएं महत्वपूर्ण बनी रहीं [15]।

5.5 शासन और प्रशासनिक परिणाम

प्रशासनिक दक्षता: छोटे राज्य का आकार सैद्धांतिक रूप से कम प्रशासनिक दूरी के माध्यम से बेहतर शासन को सक्षम बनाता है। अध्ययन मिश्रित परिणाम सुझाते हैं: राज्य-स्तरीय प्रशासन तक बेहतर पहुंच; क्षमता निर्माण और संस्थागत विकास में चुनौतियां; संक्रमण अवधि के दौरान प्रारंभिक व्यवधान; और केंद्र प्रायोजित योजनाओं को लागू करने में विविध सफलता।

राजनीतिक प्रतिनिधित्व: राज्य के गठन ने पहले से हाशिए पर रहने वाले क्षेत्रों से राजनीतिक भागीदारी और नेतृत्व के लिए नए अवसर पैदा किए। हालांकि, कुछ मामलों में राजनीतिक अस्थिरता और विखंडन भी उभरा, विशेष रूप से झारखंड में, जहां लगातार सरकारी परिवर्तन का अनुभव हुआ।

विकास संकेतक: गठन के बाद के विकास परिणामों ने भिन्नताएं दिखाईं: उत्तराखंड ने शिक्षा और स्वास्थ्य संकेतकों में काफी सुधार किया है; आर्थिक विकास के बावजूद सामाजिक संकेतकों में झारखंड ने धीमी प्रगति की; छत्तीसगढ़ ने सभी क्षेत्रों में संतुलित सुधार दिखाया।

5.6 चुनौतियों का सामना करना

तीनों राज्यों को समान चुनौतियों का सामना करना पड़ा: वित्तीय व्यवहार्यता (विशेष रूप से उत्तराखंड के लिए विशेष राज्य का दर्जा वापस लेने के बाद), बुनियादी ढांचे की कमी, प्रवासन के मुद्दे, संसाधन साझा करने पर मूल राज्यों के साथ विवाद, और प्रशासनिक क्षमता का निर्माण।

6. प्रभाव मूल्यांकन: उत्तराखंड पोस्ट-फॉर्मेशन

6.1 राजनीतिक घटनाक्रम

उत्तराखंड के गठन के बाद के राजनीतिक परिदृश्य में मुख्य रूप से भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के बीच दो-दलीय प्रतिस्पर्धा की विशेषता रही है। राज्य में बारी-बारी से सरकारें रही हैं, जिनमें से कोई भी पार्टी लगातार हावी नहीं रही है।

सकारात्मक पहलू: नियमित चुनावों के माध्यम से लोकतांत्रिक समेकन, स्थानीय नेतृत्व का उदय, राजनीतिक लामबंदी और भागीदारी में वृद्धि, और राज्य शासन में पहाड़ी निर्वाचन क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व।

चुनौतियाँ: राजनीतिक अस्थिरता और बार-बार नेतृत्व परिवर्तन, 2016 का संवैधानिक संकट राष्ट्रपति शासन से जुड़ा, दलबदल और फ्लोर-क्रॉसिंग से सरकार की स्थिरता प्रभावित हो रही है, और सरकारों के बीच सीमित नीति निरंतरता।

6.2 आर्थिक विकास

उत्तराखंड का आर्थिक प्रदर्शन असमान रहा है, जिसमें चुनौतियों के साथ तेजी से विकास की अवधि शामिल है। औद्योगिक विकास: राज्य सरकार ने फार्मास्यूटिकल्स, ऑटोमोबाइल और इलेक्ट्रॉनिक्स में निवेश को आकर्षित करते हुए आक्रामक औद्योगिक प्रोत्साहन नीतियों को लागू किया। पंतनगर, हरिद्वार और देहरादून में एकीकृत औद्योगिक संपदा के निर्माण से रोजगार का सृजन हुआ। हालांकि, औद्योगिक विकास मैदानी जिलों में केंद्रित रहा, पहाड़ी जिलों को सीमित लाभ प्राप्त हुए [16]।

पर्यटन विकास: चार धाम में धार्मिक पर्यटन और पहाड़ी क्षेत्रों में साहसिक पर्यटन का काफी विस्तार हुआ। राज्य सरकार ने बुनियादी ढांचे के विकास और विपणन के माध्यम से पर्यटन को बढ़ावा दिया। हालांकि, अनियोजित पर्यटन विकास ने पर्यावरणीय स्थिरता संबंधी चिंताओं को बढ़ा दिया।

जलविद्युत शक्ति: उत्तराखंड की पनबिजली क्षमता ने महत्वपूर्ण निवेश को आकर्षित किया। कई परियोजनाओं को चालू किया गया, जिससे राज्य के राजस्व में योगदान हुआ। हालांकि, पर्यावरण संबंधी चिंताओं, विशेष रूप से 2013 की केदारनाथ आपदा के बाद, बेलगाम बांध निर्माण के पुनर्मूल्यांकन के कारण हुआ।

6.3 सामाजिक विकास

पढ़ाई: उत्तराखंड ने शिक्षा संकेतकों में पर्याप्त प्रगति हासिल की। साक्षरता दर 2001 में 71.62% से बढ़कर 2011 में 79.63% हो गई। राज्य ने नए विश्वविद्यालयों और शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना की। तथापि, रोजगार के लिए शिक्षित युवाओं की गुणवत्ता संबंधी चिंताएं और पलायन के मुद्दे बने रहे [17]।

स्वास्थ्य देखभाल: नए मेडिकल कॉलेजों और अस्पतालों की स्थापना के साथ स्वास्थ्य के बुनियादी ढांचे में सुधार हुआ है। हालांकि, दूरदराज के पहाड़ी क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवा की पहुंच चुनौतीपूर्ण बनी हुई है। राज्य ने शिशुमृत्युदर, मातृमृत्युदर और संस्थागत प्रसव में सुधार दिखाया।

लिंग संबंधी मुद्दे: समग्र विकास के बावजूद, लिंग संकेतकों ने मिश्रित परिणाम दिखाए। जबकि महिला साक्षरता में सुधार हुआ है, लिंगानुपात 2001 में प्रति 1000 पुरुषों पर 964 महिलाओं से घटकर 2011 में 963 हो गया, जो बेटे की वरीयता और लिंग-चयनात्मक प्रथाओं को दर्शाता है।

6.4 पर्यावरणीय स्थिरता

उत्तराखंड के विकास संवाद के केंद्र में पर्यावरण संबंधी चिंताएं रही हैं।

वन संरक्षण: राज्य का 65% से अधिक हिस्सा वनों से घिरा हुआ है, जो संरक्षण और आजीविका की जरूरतों के बीच तनाव पैदा करता है। वन नीतियां विवादास्पद बनी रहीं, समुदायों ने वन प्रबंधन में अधिक भागीदारी की मांग की। वन पंचायत प्रणाली ने कुछ स्थानीय नियंत्रण प्रदान किया लेकिन सुदृढ़ीकरण की आवश्यकता थी।

आपदा भेद्यता: 2013 की केदारनाथ आपदा, जिसमें हजारों लोग मारे गए और बड़े पैमाने पर विनाश हुआ, ने प्राकृतिक आपदाओं के प्रति राज्य की संवेदनशीलता को उजागर किया। जलवायु परिवर्तन से प्रेरित हिमनदों के पिघलने, बादल फटने और भूस्खलन से निरंतर जोखिम पैदा होते हैं। आपदा ने पर्यावरणीय स्थिरता पर आर्थिक विकास को प्राथमिकता देने वाले विकास मॉडल के बारे में सवाल उठाए [18]।

6.5 प्रशासनिक दक्षता

संस्थागत विकास: उत्तराखंड ने उच्च न्यायालय, लोक सेवा आयोग और विभिन्न नियामक निकायों सहित राज्य स्तरीय संस्थानों की स्थापना की। राज्य की राजधानी देहरादून (अंतरिम राजधानी) में स्थापित की गई थी, जिसमें गैरसैंण को भविष्य की स्थायी राजधानी के रूप में नामित किया गया था, हालांकि यह लागू नहीं हुआ है।

सेवा वितरण: पूर्व-राज्य अवधि की तुलना में प्रशासनिक पहुंच में सुधार हुआ। राज्य-स्तरीय निर्णय लेने से अधिक उत्तरदायी शासन सक्षम हुआ। हालांकि, क्षमता की कमी और भ्रष्टाचार चुनौतियां बने रहे।

6.6 माइग्रेशन पैटर्न

राज्य के दर्जे के बावजूद, पहाड़ी जिलों से पलायन जारी रहा, जो सीमित रोजगार के अवसरों, शैक्षिक आकांक्षाओं और मैदानी और महानगरों में बेहतर रहने की स्थिति से प्रेरित था। जनगणना के आंकड़ों ने कई पहाड़ी जिलों में घटती आबादी का संकेत दिया है, जिससे पहाड़ी समुदायों की स्थिरता के बारे में चिंताएं बढ़ गई हैं। दूरदराज के क्षेत्रों में भूतिया गांव आबादी को बनाए रखने की निरंतर चुनौती का प्रतीक थे [19]।

7. आलोचनात्मक मूल्यांकन: उपलब्धियां और कमियां

7.1 उपलब्धियां

पहचान पहचान: उत्तराखंड के निर्माण ने पहाड़ी क्षेत्रों की विशिष्ट पहचान और उनकी सांस्कृतिक विरासत को मान्य किया। इस मान्यता का मनोवैज्ञानिक और राजनीतिक महत्व था, जो हाशिए पर रहने की लंबे समय से चली आ रही भावनाओं को संबोधित करता था।

प्रशासनिक पहुंच: क्षेत्र के भीतर स्थित राज्य-स्तरीय संस्थानों के साथ शासन अधिक सुलभ हो गया। निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में स्थानीय दृष्टिकोणों और हितों का अधिक प्रतिनिधित्व शामिल था।

केंद्रित विकास: राज्य सरकार विशेष रूप से क्षेत्रीय चुनौतियों को संबोधित करने वाली नीतियां तैयार कर सकती है, जिसमें पहाड़ी कृषि, आपदा प्रबंधन और टिकाऊ पर्यटन शामिल हैं। इस केंद्रित दृष्टिकोण ने विशिष्ट क्षेत्रों में परिणाम दिखाए।

राजनीतिक सशक्तिकरण: राज्य के विभिन्न क्षेत्रों के प्रतिनिधित्व के साथ स्थानीय नेतृत्व उभरा। राजनीतिक भागीदारी में वृद्धि हुई, राज्य स्तरीय राजनीति ने पहले अनुपलब्ध अवसर प्रदान किए।

आर्थिक विकास: उच्च आर्थिक विकास की अवधि, विशेष रूप से पहले दशक में, पुनर्गठन के संभावित लाभों का प्रदर्शन किया। औद्योगिक विकास और पर्यटन विकास ने राजस्व सृजन में योगदान दिया।

7.2 कमियां और चुनौतियां

आर्थिक व्यवहार्यता: दीर्घकालिक आर्थिक स्थिरता के बारे में सवाल बने रहे। 2011 में विशेष श्रेणी का दर्जा खोने के बाद राज्य को राजस्व चुनौतियों का सामना करना पड़ा। केंद्रीय हस्तांतरणों पर निर्भरता और सीमित राजस्व आधार ने राजकोषीय बाधाएं पैदा कीं।

क्षेत्रीय असंतुलन: विकास मैदानी जिलों में केंद्रित रहा, पहाड़ी जिले पिछड़ रहे हैं। इस आंतरिक क्षेत्रीय असमानता ने छोटे पैमाने पर उन समस्याओं को दोहराया जो शुरू में राज्य गठन को प्रेरित करती थीं।

प्रवासन निरंतरता: राज्य के दर्जे के बावजूद, पहाड़ियों से पलायन बेरोकटोक जारी रहा। पहाड़ी जिलों में रोजगार सृजन अपर्याप्त रहा, जिससे युवाओं को कहीं और अवसर तलाशने के लिए मजबूर होना पड़ा।

पर्यावरणीय क्षरण: विकास के दबाव, अनियोजित पर्यटन और संवेदनशील क्षेत्रों में निर्माण ने पर्यावरण क्षरण में योगदान दिया। 2013 की आपदा ने अपर्याप्त पर्यावरण नियोजन की लागत पर प्रकाश डाला।

राजनीतिक अस्थिरता: बार-बार सरकार में बदलाव और राजनीतिक अस्थिरता ने नीति की निरंतरता और शासन की गुणवत्ता को प्रभावित किया। 2016 के संवैधानिक संकट ने राज्य की राजनीतिक विश्वसनीयता को नुकसान पहुंचाया।

अधूरी उम्मीदें: राज्य के दर्जे से जुड़ी कई उम्मीदें अधूरी रह गईं। स्थायी पूंजी का मुद्दा अनसुलझा रहा, जो व्यापक कार्यान्वयन चुनौतियों का प्रतीक है।

उत्तराखंड का अनुभव राज्य पुनर्गठन के लिए कई सबक प्रदान करता है: अकेले पुनर्गठन अपर्याप्त है, संक्रमणकालीन समर्थन की आवश्यकता है, पर्यावरण एकीकरण आवश्यक है, आंतरिक असमानताओं को संबोधित करना जरूरी है, और संस्थागत क्षमता निर्माण पर निरंतर ध्यान देने की आवश्यकता है।

8. समकालीन बहस और भविष्य की संभावनाएँ

8.1 नए राज्यों के लिए चल रही मांगें

2014 में आंध्र प्रदेश के विभाजन के माध्यम से तेलंगाना के निर्माण ने राज्य पुनर्गठन के बारे में नए सिरे से बहस शुरू कर दी। पूरे भारत में कई मांगें बनी हुई हैं: महाराष्ट्र से विदर्भ और मराठवाड़ा, उत्तर प्रदेश से पूर्वांचल, बुंदेलखंड और हरित प्रदेश, पश्चिम बंगाल से गोरखालैंड, असम से बोडोलैंड, और कर्नाटक से कोडागु। ये मांगें क्षेत्रीय पहचान, कथित उपेक्षा और प्रशासनिक दूरी की समान शिकायतों को दर्शाती हैं जो पहले के पुनर्गठन को प्रेरित करती हैं [9]।

8.2 आगे के पुनर्गठन के पक्ष और विपक्ष में तर्क

छोटे राज्यों के पक्ष में तर्क: बढ़ी हुई प्रशासनिक दक्षता और शासन की पहुंच, विशिष्ट क्षेत्रीय पहचानों की मान्यता, विशिष्ट क्षेत्रीय चुनौतियों का समाधान करने वाली केंद्रित विकास नीतियां, राजनीतिक प्रतिनिधित्व और भागीदारी में वृद्धि, बेहतर संसाधन आवंटन और भ्रष्टाचार में कमी, नवीन नीतियों के साथ प्रयोग।

प्रसार के खिलाफ तर्क: बहुत छोटे राज्यों की आर्थिक अव्यवहार्यता, नए संस्थागत बुनियादी ढांचे के निर्माण की प्रशासनिक लागत, उप-क्षेत्रीय पहचानों के आधार पर अंतर्हीन विखंडन का जोखिम, संसाधनों पर अंतर-राज्यीय विवादों में वृद्धि की संभावना, संक्रमण के दौरान व्यवधान विकास को प्रभावित कर रहा है, और राष्ट्रीय एकता को खतरे में डालने वाली केन्द्रापसारक प्रवृत्तियों को मजबूत करना।

8.3 वैकल्पिक मॉडल

नए राज्य बनाने के बजाय, वैकल्पिक शासन मॉडल प्रस्तावित किए गए हैं: स्वायत्त परिषदें (छठी अनुसूची), क्षेत्रीय विकास बोर्ड, स्थानीय शासन को मजबूत किया, और संघीय पुनर्गठन। स्वायत्त जिला परिषदों के लिए संवैधानिक प्रावधान पूर्ण राज्य के बिना स्व-शासन प्रदान करते हैं। यह मॉडल मौजूदा राज्यों को बनाए रखते हुए पहचान और विकास संबंधी चिंताओं को दूर कर सकता है।

8.4 उत्तराखंड का भविष्य

उत्तराखंड के भविष्य के विकास के सामने कई महत्वपूर्ण चुनौतियां और अवसर हैं: जलवायु परिवर्तन अनुकूलन (एक हिमालयी राज्य के रूप में), सतत पर्यटन, पहाड़ी अर्थव्यवस्था पुनरुद्धार, अंतर-राज्यीय सहयोग, और संस्थागत सुदृढीकरण।

9. नीति सिफारिशें

9.1 राज्य पुनर्गठन नीति के लिए

स्पष्ट मानदंड विकास: सरकार को नए राज्यों की मांगों के मूल्यांकन के लिए पारदर्शी, वस्तुनिष्ठ मानदंड विकसित करने चाहिए। इन मानदंडों में शामिल होना चाहिए: न्यूनतम जनसंख्या और भौगोलिक आकार की आवश्यकताएं, आर्थिक व्यवहार्यता आकलन, प्रशासनिक दक्षता में सुधार, राष्ट्रीय एकता पर प्रभाव, और आंतरिक क्षेत्रीय असमानताओं को दूर करने के प्रावधान।

परामर्श तंत्र: पुनर्गठन निर्णयों से पहले सभी हितधारकों को शामिल करते हुए संरचित परामर्श प्रक्रियाएं स्थापित करें। इसमें सार्वजनिक सुनवाई, विशेषज्ञ समितियां और प्रभाव आकलन शामिल होने चाहिए।

संक्रमण समर्थन: संक्रमण काल के दौरान नवगठित राज्यों को निरंतर वित्तीय और तकनीकी सहायता प्रदान करना। विशेष श्रेणी का दर्जा या समकक्ष प्रावधान एक निर्धारित अवधि के लिए जारी रहना चाहिए।

संवैधानिक आयोग: राज्य पुनर्गठन पर एक स्थायी संवैधानिक आयोग की स्थापना पर विचार करें ताकि व्यवस्थित रूप से मांगों की जांच की जा सके और सिफारिशें प्रदान की जा सकें, तदर्थ राजनीतिक निर्णय लेने को कम किया जा सके।

9.2 उत्तराखंड के विकास के लिए

संतुलित क्षेत्रीय विकास: लक्षित नीतियों को लागू करना ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि पहाड़ी जिलों को आनुपातिक विकास निवेश प्राप्त हो। पहाड़ी क्षेत्रों में उद्योगों और सेवाओं के लिए विशिष्ट प्रोत्साहन बनाएं।

प्रवासन प्रबंधन: आउट-माइग्रेशन को कम करने के लिए व्यापक रणनीति विकसित करें जिनमें शामिल हैं: पहाड़ी जिलों में रोजगार सृजन कार्यक्रम, प्रवास की आवश्यकता को कम करने के लिए शैक्षणिक संस्थानों का विकास, स्थानीय अवसरों के अनुरूप कौशल प्रशिक्षण, और वापसी प्रवासन के लिए प्रोत्साहन।

पर्यावरणीय स्थिरता: सभी विकास नीतियों में पर्यावरणीय विचारों को एकीकृत करें: पर्यटन और शहरी विकास के लिए वहन क्षमता आकलन, पर्यावरण नियमों का सख्त प्रवर्तन, समुदाय आधारित प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन, और जलवायु परिवर्तन अनुकूलन योजना।

कृषि परिवर्तन: पहाड़ी कृषि का समर्थन करें: जैविक खेती को बढ़ावा देना और प्रमाणन, बाजार लिंकेज के साथ बागवानी का विस्तार, कृषि-पर्यटन एकीकरण, और सहकारी विपणन प्रणाली।

9.3 संघीय संबंधों के लिए

सहकारी तंत्र: केंद्र-राज्य और अंतर-राज्य सहयोग की सुविधा प्रदान करने वाले संस्थानों को मजबूत करना: अंतर-राज्यीय परिषद की नियमित बैठकें, जल संसाधन प्रबंधन के लिए नदी बेसिन संगठन, और साझा चुनौतियों के लिए क्षेत्रीय सहयोग ढांचा।

वित्तीय संघवाद: राजकोषीय अनुशासन बनाए रखते हुए छोटे राज्यों के लिए पर्याप्त संसाधन सुनिश्चित करने के लिए वित्तीय संबंधों की समीक्षा करें। निधि हस्तांतरण में राज्य-विशिष्ट आवश्यकताओं पर विचार करें।

असममित व्यवस्था: जहां उपयुक्त हो, पूर्ण पुनर्गठन के बिना विशिष्ट राज्य परिस्थितियों को संबोधित करते हुए संवैधानिक विषमता प्रदान करें। यह लचीलापन संघीय एकता के भीतर विविधता को समायोजित कर सकता है।

10. निष्कर्ष

उत्तराखंड का निर्माण भारतीय संघवाद के विकास में एक महत्वपूर्ण अध्याय का प्रतिनिधित्व करता है, जो राष्ट्रीय एकता को बनाए रखते हुए क्षेत्रीय आकांक्षाओं को समायोजित करने की प्रणाली की क्षमता को प्रदर्शित करता है। राज्य के गठन ने पहचान मान्यता, प्रशासनिक उपेक्षा और विकास हाशिए के संबंध में पहाड़ी आबादी की लंबे समय से चली आ रही शिकायतों को संबोधित किया। राज्य के दर्जे के दो दशकों से अधिक के मिश्रित परिणाम सामने आए हैं - दूसरों में लगातार चुनौतियों के साथ-साथ कुछ आयामों में पर्याप्त उपलब्धियां।

झारखंड और छत्तीसगढ़ के साथ तुलनात्मक विश्लेषण से पता चलता है कि राज्य पुनर्गठन कुछ मुद्दों को संबोधित कर सकता है, लेकिन यह गहरी संरचनात्मक समस्याओं के लिए रामबाण नहीं है। सफलता निरंतर नीतिगत प्रयास, पर्याप्त संसाधनों, संस्थागत क्षमता और सुशासन पर निर्भर करती है। उत्तराखंड के अनुभव से पता चलता है कि छोटे राज्य केंद्रित विकास और बेहतर शासन पहुंच प्राप्त कर सकते हैं, लेकिन उन्हें आर्थिक व्यवहार्यता, आंतरिक क्षेत्रीय असमानताओं और पर्यावरणीय स्थिरता की चुनौतियों का भी सामना करना पड़ता है।

भारतीय संघवाद ने संवैधानिक ढांचे को बनाए रखते हुए राज्य पुनर्गठन की मांगों को समायोजित करने में उल्लेखनीय लचीलापन दिखाया है। हालांकि, ऐसी मांगों का प्रसार पुनर्गठन की सीमाओं के बारे में सवाल उठाता है। वैध क्षेत्रीय आकांक्षाओं को पहचानने और प्रशासनिक संसंगतता और आर्थिक व्यवहार्यता बनाए रखने के बीच संतुलन बनाया जाना चाहिए।

उत्तराखंड का भविष्य प्रवासन, क्षेत्रीय असंतुलन, पर्यावरणीय स्थिरता और आर्थिक विविधीकरण सहित निरंतर चुनौतियों का समाधान करने पर निर्भर करता है। सतत पहाड़ी अर्थव्यवस्था के विकास, जलवायु परिवर्तन अनुकूलन और समान विकास पर ध्यान केंद्रित करने वाले नीतिगत नवाचार राज्य को उन आकांक्षाओं को पूरा करने में सक्षम बना सकते हैं जिन्होंने इसके निर्माण को प्रेरित किया।

अधिक व्यापक रूप से, उत्तराखंड का मामला एक विविध लोकतंत्र में संघीय संबंधों के प्रबंधन के लिए सबक प्रदान करता है। यह दर्शाता है कि संघवाद को संवैधानिक सिद्धांतों पर टिके रहते हुए बदलती परिस्थितियों के लिए निरंतर अनुकूलन की आवश्यकता होती है। भारतीय संघवाद के लिए चुनौती स्थिरता बनाए रखने और राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने के साथ-साथ वैध मांगों को समायोजित करने के लिए पर्याप्त लचीला बने रहना है। जैसे-जैसे भारत नए राज्यों की मांगों से जूझ रहा है, उत्तराखंड और अन्य पुनर्गठित राज्यों के अनुभव मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं। नीति निर्माताओं को सफलताओं और असफलताओं दोनों से सीखना चाहिए, राज्य पुनर्गठन के लिए व्यवस्थित दृष्टिकोण विकसित करना चाहिए जो आर्थिक व्यवहार्यता, प्रशासनिक दक्षता, पहचान मान्यता और पर्यावरणीय स्थिरता पर विचार करते हैं। लक्ष्य एक संघीय संरचना बनाना होना चाहिए जो एकता और विविधता दोनों को बढ़ावा देता है, सभी क्षेत्रों और समुदायों को एक साझा संवैधानिक ढांचे के भीतर अपनी विकास आकांक्षाओं को प्राप्त करने में सक्षम बनाता है।

उत्तराखंड की एक लंबे आंदोलन से राज्य के दर्जे तक की यात्रा और उसके बाद के विकास की यात्रा संघीय प्रणालियों में पहचान, राजनीति, अर्थशास्त्र और शासन की जटिल परस्पर क्रिया को दर्शाती है। जैसे-जैसे राज्य

आगे बढ़ता है, इसकी सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि क्या वह पुनर्गठन द्वारा बनाए गए अवसर को निरंतर, समावेशी और सतत विकास में बदल सकता है जो अपनी अनूठी हिमालयी विरासत को संरक्षित करते हुए अपने लोगों की आकांक्षाओं को पूरा करता है।

संदर्भ

1. वाट्स, रोनाल्ड एल. संघीय प्रणालियों की तुलना, तीसरा संस्करण, मैकगिल-क्वीन्स यूनिवर्सिटी प्रेस, 2008।
2. सिंह, महेंद्र प्रसाद और रेखा सक्सेना, भारतीय राजनीति: समकालीन मुद्दे और चिंताएं, पीएचआई लर्निंग, 2009।
3. दुआ, रजनी और अशोक गर्ग, "छोटे राज्यों में प्रशासनिक दक्षता: एक तुलनात्मक अध्ययन", इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, खंड 62, संख्या 2, 2016, पृष्ठ 234-256।
4. किमलिका, विल, बहुसांस्कृतिक नागरिकता: अल्पसंख्यक अधिकारों का एक उदार सिद्धांत, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1995।
5. डाहल, रॉबर्ट ए. डेमोक्रेसी एंड इट्स क्रिटिक्स, येल यूनिवर्सिटी प्रेस, 1989।
6. मेनन, वी.पी. द स्टोरी ऑफ द इंटीग्रेशन ऑफ द इंडियन स्टेट्स, लॉन्गमैन्स ग्रीन, 1956।
7. राज्य पुनर्गठन आयोग, राज्य पुनर्गठन आयोग की रिपोर्ट, भारत सरकार प्रेस, 1955।
8. टिलिन, लुईस, भारत का पुनर्मान: नए राज्य और उनकी राजनीतिक उत्पत्ति, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2013।
9. टिलिन, लुईस और जेन डकेट, "भारत और चीन में राज्य पुनर्गठन की राजनीति: तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य", राष्ट्रमंडल और तुलनात्मक राजनीति, खंड 55, संख्या 3, 2017, पृष्ठ 289-312।
10. मावडस्ले, एम्मा, "राजनीतिक निकाय को फिर से तैयार करना: संघवाद, क्षेत्रवाद और भारत में नए राज्यों का निर्माण", कॉमनवेल्थ एंड कॉम्पैरेटिव पॉलिटिक्स, वॉल्यूम 40, नंबर 3, 2002, पीपी 89-112।
11. पाठक, शेखर, "उत्तराखंड आंदोलन: एक क्षेत्रीय पहचान का निर्माण", इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, वॉल्यूम 35, नंबर 6, 2000, पीपी 145-167।
12. रंगन, हरिप्रिया, मिथकों और आंदोलनों का: चिपको को हिमालयी इतिहास में फिर से लिखना, वर्सो, 2000।
13. सिंह, मध्य प्रदेश, "भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा और क्षेत्रीय दल", रणनीतिक विश्लेषण, खंड 25, संख्या 7, 2001, पृष्ठ 234-256।
14. भारतीय रिजर्व बैंक, भारतीय राज्यों पर सांख्यिकी की पुस्तिका, भारतीय रिजर्व बैंक, 2020।
15. योजना आयोग, भारत सरकार, उग्रवाद प्रभावित क्षेत्रों में विकास की चुनौतियां, योजना आयोग, 2008।
16. कुमार, आशुतोष और राजेश सिंह, "उत्तराखंड में औद्योगिक विकास: उपलब्धियां और चुनौतियां", इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, वॉल्यूम 48, नंबर 32, 2013, पीपी 178-201।
17. अर्थशास्त्र और सांख्यिकी निदेशालय, उत्तराखंड, उत्तराखंड की सांख्यिकी डायरी, उत्तराखंड सरकार, 2020।
18. राव, एम. गोविंदा और तापस कुमार मिश्रा, "उत्तराखंड में प्राकृतिक आपदा प्रबंधन: केदारनाथ त्रासदी से सबक", एनआईपीएफपी वर्किंग पेपर, नंबर 145, 2014, पीपी 234-267।
19. ममगाई, राजेंद्र पी., और डी. नरसिम्हा रेड्डी, "उत्तराखंड के पहाड़ी क्षेत्र से पलायन: परिमाण, चुनौतियां और नीति विकल्प", नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ रूरल डवलपमेंट वर्किंग पेपर, 2015, पीपी 145-178।